वाक़िअ-ए-कर्बला से अख़्लाक़ का सबक़

सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे (8)

सय्यिदुल उलमा की यह तक़रीर गंगाप्रसाद मेमोरियल हाल, अमीनाबाद, लखनऊ में हुई थी

अख़लाक़ की दुनिया बहुत बड़ी है यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी किताबें अख़लाक़ के फ़न पर लिखी जा चुकी हैं वह सदियों से मुस्तक़िल इल्म बना हुआ है।

देखने में भी ऐसा मालूम होता है कि दुनिया में अख़लाक़ के मेयार एक ही तरह नहीं होते। कुछ मुल्कों और क़ौमों में जो बातें अख़लाक़ी ख़ूबियाँ समझी जाती हैं वही दूसरी जगहों या दूसरी क़ौमों में बुरी समझी जाती हैं। एक वक़्त में जो चीज़ अच्छे अख़लाक़ में दाख़िल होती है दूसरे वक़्त में बदअख़लाक़ी क़रार पा जाती है। इस तरह अख़लाक़ की हदों को सही तरह तैय करना दुश्वार लगने लगता है।

लेकिन ग़ौर करने पर समझ में आता है ख़ुश अख़लाक़ी और बदअख़लाक़ी की हदों में जो कुछ इख़्तेलाफ़ या शक नज़र आता है वह जुज़ियात के एतेबार से है मगर वह कुल्ली मेयार जिसके तहत में आने से कोई चीज़ ख़ुश अख़लाक़ी या बदअख़लाक़ी बन सकती है। इसमें कोई इख़्तेलाफ़ नहीं है। वह मतलब भी दोनों तरह के अख़लाक़ का इन्साफ़ और ज़ुल्म है। जो चीज़ इन्साफ़ के तहत दाख़िल हो वह सबके नज़दीक अच्छी होगी और जो ज़ुल्म के तहत में हो वह सबके नज़दीक बुरी। यह और बात है कि किसी चीज़ के बारे में इस बात में इख़्तेलाफ़ हो जाए कि वह उनमें किस उनवान के तहत दाख़िल है।

अदालत का मुकम्मल और सही मतलब क्या है? हक़ और हदों की हिफ़ाज़त और ज़ुल्म क्या है? हक़ और हद से आगे बढ़ना। क़ुरआन मजीद ने भी ज़ुल्म का मेयार यही बताया है: ''जो क़ुदरत की बनाई हुई हदों से आगे क़दम बढ़ाते हैं वह ज़ालिम हैं।''

इख़्तेलाफ़ सही हदों के तैय करने और जायज़ हक़ को चुनने में होता है मगर हक़ को मानने के बाद हर शख़्स उससे आगे बढ़ने वाले को ज़ालिम और उस ज़ालिम को बुरा और ख़राब समझेगा। इख़्तेलाफ़ इसमें होगा कि यह ज़ुल्म है या नहीं लेकिन ज़ुल्म हर एक के नज़दीक बुरा होगा। चाहे वह किसी भी क़ौम या मुल्क का परवरिश पाया हुआ रहने वाला हो। यह अख़लाक़ के उसूल हैं। इन्हीं के हुक्म में अमानत और ख़यानत, सच्चाई और झूठ और बुरी बात करना वग़ैरा हैं।

यक़ीन किया जा सकता है कि जो झूठा है वह भी सच को अच्छा समझता है वरना सच्चा बनने की कोशिश न करे और अगर सच्चा बने नहीं तो झूठा ही क्यों क़रार पाये। झूठ की इमारत ख़ुद क़ायम है सच्चाई की क़द्र और मन्ज़िलत के एहसास पर। इसी तरह कोई बड़े से बड़ा बद दयानत हो उसे ''बेईमान'' कहिये तो वह बुरा मानेगा और उसे गाली समझेगा। ज़ालिम को अगर ज़ालिम कहिये तो वह ख़ुश न होगा और ख़यानत करने वाले को ख़ाइन कहिये तो वह हरगिज़ ख़ुश न होगा।

यह दलील है इसकी कि इन अख़लाक़ के उसूलों का एहसास आम अक़्ल और इन्सानी फ़ितरत में एक हैसियत से छुपा हुआ है। हर शख़्स उन अच्छे अख़लाक़ को पसन्द और बुरे अख़लाक़ को नापसन्द करता है चाहे वह ख़ुद उन बुराईयों में फंसा हो।

इसकी एक आसान पहचान यह है कि यह शख़्स ख़ुद जब कभी किसी की बुराई करता है तो देखिये वह इसके बारे में क्या-क्या कहता है? यक़ीनन वह उसकी बुराईयों में यही कुछ कहेगा कि मक्कार है, दग़ाबाज़ है, जालसाज़ है, झूठा है, ज़ालिम है, बेईमान है वग़ैरा-वग़ैरा। बस इसी से साबित होता है कि यह सब बातें उसके नज़दीक भी बुराई में दाख़िल हैं। यह और बात है कि वह ख़ुद भी उन्हीं को करता है। इसी तरह जब वह किसी की तारीफ़ करना चाहे तो देखिये क्या कहता है? सिवाए इसके कुछ नहीं कि वह बड़ा ईमानदार है, बड़ा सच्चा है, बड़ा हमदर्द है, बड़ा इन्साफ़ करने वाला है वग़ैरा-वग़ैरा। इससे साबित है कि अच्छाई और बुराई की ख़ूबियाँ सबके नज़दीक तैय और मुक़र्रर हैं और यह वही अख़लाकी बातें हैं जिनकी समझ इन्सानी फ़ितरत में छुपी हुई है।

हर बच्चा इस्लामी फितरत पर पैदा होता है। फिर बुराईयों की तरफ कैसे चला जाता है? बाहरी हरकतों से जिनका एक उनवान है लालच और डर लालच की मन्ज़िल है सिर्फ़ वक़्ती दिली एहसास, उसके आगे माल और दौलत, इज़्ज़त और मालदारी या शोहरत और कभी सिर्फ़ हमरगे जमाअत होने का मज़ा।

माल और दौलत में भी इन्सानों की क़ीमत अलग-अलग है। कोई चन्द पैसों में हक़ के रास्ते से हटने के लिए तैयार हो जाता है किसी के लिए चन्द रुपयों की ज़रूरत होती और किसी का भाव सैकड़ों या हज़ारों तक पहुँचता है। इसकी वजह से इन्सान के समझने में परेशानी होती है। दस हज़ार की रिश्वत किसी के सामने पेश की गई, उसने मुँह फेर लिया आपने कहा बड़ा ईमानदार है मगर आपको उसके दिल की हालत क्या मालूम। शायद वह इस क़ीमत को अपने लिए कम समझ कर फिरा हो। अगर इस रक़म को दोगुना कर दिया जाता तो वह मामले के लिए तैयार हो जाता। इसीलिए सच्चाई के सबसे बड़े पैरोकार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] के सामने जब उनकी हक़ परस्ती के मुक़ाबले में क़ीमतें पेश की गईं कि जिस अरब खानदान में कहिये आपकी शादी कर दी जाए। जितना माल और दौलत कहिये हाज़िर कर दिया जाए, फ़रमाइये तो हम आपको अपना बादशाह मान लें तो अगरचे इन लोगों ने अपनी सोच के मुताबिक़ बड़ी से बड़ी चीज़ें पेश की थीं मगर आप ने जवाब में सिर्फ़ इन्कार पर बस नहीं किया क्योंकि इसमें इस ख़याल की जगह थी कि अगर इससे बढ़कर कोई चीज़ लायी जाए तो शायद नफ़्स बिक जाए बल्कि आप ने जवाब में अपनी तरफ़ से एक पैमाना पेश कर दिया जो मुमकिन नहीं यानी यह कि अगर मेरे एक हाथ पर चाँद रख दो और दूसरे हाथ पर सूरज तो भी इस हक़ के पैग़ाम की तबलीग़ न छोडूँगा। इसके बाद कोई मन्ज़िल नहीं रह जाती इस ख़याल की कि कोई चीज़ ऐसी हो सकती है जो कि उन्हें हक़ के रास्ते से हटा सके।

दूसरी चीज़ होती है ख़ौफ़, इसमें भी कई मन्ज़िलें होती हैं कोई ज़रा से माल के नुक़सान को बर्दाश्त नहीं कर सकता, कोई माली नुक़सान की परवाह नहीं करता मगर जान की नौबत आ जाए तो डरता है। कोई इज़्ज़त लुटने से डरता है और उन तमाम ख़तरों से हिफ़ाज़त कभी अक़्ली और शरअी मेयार पर सही भी होती है। यह उस वक़्त जबकि मक़सद इनसे ज़्यादा अहम न हो। फिर कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जिन्हें सिर्फ़ ख़तरे के शक भी मुँह नहीं खोलने देते और कुछ ऐसे होते हैं जो सामने खड़े हो जाते हैं।

जब यह मालूम हो गया कि अच्छे अख़लाक़ की तहरीक कम से कम इनकी फ़ितरत में दाख़िल है लेकिन यह ख़ारजी बातें यानी लालच और ख़ौफ़ वह हैं जो इस रास्ते से हटाती हैं और इन्सानों को अमल से बुरे अख़लाक़ की तरफ ले जाती हैं तो अब असली अख़लाक का सबक़ देने वाला वह नहीं है जो दुनिया के सामने बस इन सबक़ों को दोहराये कि हक़ पर क़ायम रहना अच्छी चीज़ है। इन्साफ़ और बराबरी अच्छी चीज़ है। अमानत और दयानत अच्छी चीज़ है। यह सबक़ अपनी जगह बिल्कुल ठीक, मगर वह इसलिए ज़्यादा वज़नी नहीं कि इन बातों को अच्छा तो ख़ुद हर इन्सान का ज़मीर समझता है मगर वह समझना किस काम का जिसके मुताबिक़ अमल न हो सके और फ़ितरत पर दबाव डालने वाले इन्हीं ख़यालों यानी लालच और ख़ौफ से

अमल नहीं होता। फिर अख़लाक़ का असल सबक़ कहाँ मिलेगा और हक़ीक़ी अख़लाक़ी मदरसा किसे समझना सही है। उसी मरकज़ को जहाँ इन रुजहानात को शिकस्त देकर अमल से दिखा दिया गया हो और नमूना पेश हुआ हो कि किस तरह एक मर्दे ख़ुदा को दुनिया की कोई लालच और किसी तरह का डर और ख़तरा हक़ के रास्ते से हटाने में कामयाब नहीं होता। जिसने अमली तौर पर यह मिसाल पेश कर दी वही सबसे बड़ा अख़लाक़ का उस्ताद है। उसके दरबार से हमें यह सबक़ मिलेगा कि किस तरह हम अच्छाई और सच्चाई के रास्ते पर क़ायम रहें और बड़ी से बड़ी ताक़त हम को इससे हटा न सके।

हमारा हाल क्या है? ज़रा अपने ज़हनों का जाएज़ा लीजिये। सिर्फ़ एक आदमी। जी हाँ सिर्फ़ एक वह बड़ा आदमी है हम से किसी बात को कहता है जिसे हम समझते हैं कि ग़लत है मगर चूँकि वह बड़ा आदमी है इसलिए हमें इतनी हिम्मत नहीं होती कि इससे इन्कार कर दें।

इलेक्शन में क्या होता है? तैय किये हुए होते हैं कि अब फ़लाँ को वोट न देंगे मगर इलेक्शन से पहले एक बड़ी हस्ती ग़रीब ख़ाने पर आ गयी। हालांकि इससे पहले यह हस्ती वह थी कि रास्ते में मिलती और यह ग़रीब झुक कर सलाम करता तो वह मुँह फिरा लेते या आँखों के इशारे से जवाब देते मगर आज वोट लेना है तो वह ख़ुद ग़रीब के घर तशरीफ लाए हैं। बस जनाब! अब तो मुँह से नहीं निकल सकता कि जी मैं तो दूसरे शख़्स को बेहतर समझता हूँ अब सिवाए इक़रार के इन्कार मुमकिन ही नहीं और नतीजे में क्या मुमकिन कि सिवा उस शख़्स के किसी दूसरे को वोट मिल जाए। अगर किसी ने पूछ लिया कि अरे! यह क्या तुम इनकी बहुत बुराईयाँ करते थे। अब वोट इन्हीं को दे रहे हो, कहा क्या बताऊँ, फ़लाँ साहब ग़रीबख़ाने पर ख़ुद तशरीफ लाए, अब मुख़ालेफ़त कैसे हो सकती है? यहाँ न तोप है, न बन्दूक़। न तलवार कुछ नहीं। बस सिर्फ़ ''बड़े आदमी'' और ''उन्होंने ये फरमाया'' जमहूरियत के निज़ाम में ज़्यादातर लोगों की राय इसी तरह के रुजहानों का नतीजा होते हैं। ज़ाहिर है कि इस तरह की अकसरियत हक़्क़ानियत की ज़मानतदार कहाँ हो सकती है मगर आम तौर से दुनिया वाले इसी रास्ते पर चलते, इसी सैलाब में बहते और इसी हवा में उड़ते हैं।

बड़े आदमी के ख़िलाफ़ छोटा, अकसरियत के मुक़ाबले में कोई एक आदमी पहले तो सोचता ही नहीं। आम तौर से एक आदमी उन्हीं हज़ार लोगों की आँखों से देखने लगता है। अपनी आँख की ताक़त से काम नहीं लेता और अगर सोचता है यानी दिमाग़ की ताक़त जवाब नहीं देती तो दिल की हिम्मत साथ छोड़ देती है। जो कुछ सोचा है और समझा है उसके मुताबिक़ कह नहीं सकता और अमल नहीं कर सकता।

सारी बुराईयों और ग़लतकारियों का सरचश्मा इस तरह की बातें हैं इसलिए जिसने इन बातों में से हर चीज़ को शिकस्त दे दी हो उससे बढ़कर अख़लाक़ का उस्ताद कोन है?

हुसैन[अ०] उसी हस्ती के वारिस थे जिसका एलान यह था कि ''मैं सिर्फ़ इसलिए भेजा गया हूँ कि अख़लाक़े फ़ाज़िला की तकमील करूँ'' और जिसे ख़ालिक़ ने यह सनद दी थी कि ''आप अज़ीम अख़लाक़ की दर्जे पर हैं'' हुसैन[अ०] ने उनकी गोद में परवरिश इसी दिन के लिए पाई थी कि यह उनके काम को अमली दुनिया में आख़री नुक़्ते पर पेश करके दिखा दें। उन्होंने साबित कर दिया कि मेरे बुज़ुर्गवार दादा के अख़लाक़ी तालीमात कोई ख़याली हैसियत वाले नहीं थे जो उलमा की ख़ूबसूरत अख़लाक़ी सबक़ों वाली किताबों के पन्नों में घिरे रहें बल्कि यह अमली हैसियत रखते हैं, ऐसी जो कम से कम बहत्तर लोगों की जमाअत के अन्दर जीती जागती शक्ल में नज़र आ रहे थे।

किसी मज़हब की तारीख़ में ढूँढने से एक ही वक़्त में दो चार लोग शायद मिल जाएं जो उसके तालीमात का मेयारी नमूना पेश कर सकें लेकिन यह इस्लाम के अख़लाक़ी मदरसे की ख़ासियत थी। रसूल[स०] के अहलेबैत[अ०] की तरबियत में एक ही वक़्त में इतनी बड़ी जमाअत दुनिया के सामने पेश हो रही थी जिसकी मिसाल दुनिया में दूसरी नहीं मिलती है।

इससे समझिये कि कर्बला के वाक़िए को इन्सानी दुनिया के लिए कब तक याद रखने की ज़रूरत है? जब तक इसके जैसा कोई दूसरा मिल न जाए और यही राज़ है इस कारनामे की कशिश और इसके बयान के हमेशा रहने का।

हुसैन[अ०] और उनके साथियों के सामने वह सारी चीज़ें थीं जो किसी इन्सान को हक़ीक़त के रास्ते से हटाया करती और अख़लाक़ के बेहतरीन रास्ते से दूर ले जाती हैं।

शख़सियत के एतेबार से देखिये तो बैअत तलब करने वाला यज़ीद था जो इस्लामी दुनिया का शहंशाह बना हुआ था। कसरत उसकी तरफ़ थी और कैसी कसरत? बिना किसी मुबालग़े के इस्लामी दुनिया उसके सामने सर झुका चुकी थी और सब ही बैअत कर चुके थे और अगर बैअत न कर चुके होते तो तारीख़ उन लोगों के नामों को शुमार करके हमारे सामने क्यों पेश करती जिन्होंने बैअत नहीं की थी। ख़ुद यज़ीद के बाप अमीरे शाम मुआविया के यही अलफ़ाज़ तारीख़ में लिखे हैं जो यज़ीद से कहे थे कि मैंने सारे मुसलमानों की गर्दनें तेरे लिये झुका दी हैं सिर्फ़ चार आदमियों से मुझे डर बाक़ी है। यह चार भी कहने को चार थे वरना अमीरे शाम ख़ूब जानते थे कि इनमें असल हुसैन[अ०] हैं चुनानचे उन्होंने मदीने में आने के बाद इमाम हुसैन[अ०] को देखकर यही कहा था कि अभी तक चार आदमी अलग हैं जिनमें क़यादत करने वाले आप हैं।

फिर उस शख़सियत और अकसरियत के मुक़ाबले में इमाम[अ०] का यह फ़रमाना कि बैअत नहीं करूँगा, इसमें क्या ख़तरे सामने थे? जितनी तरह के ख़तरे किसी के सामने हो सकते हैं वह सब एक साथ इमाम के सामने थे चुनानचे वह ख़तरे धीरे-धीरे पेश आते रहे मगर हुसैन[अ०] ने जो इन्कार किया था वह कब तक बाक़ी रहा? इसकी हद कौन बता सकता है। बस यह समझ लीजिये कि ज़ुल्म और सितम के मुमकिन होने में आगे बढ़ने की गुन्जाइश न रही और हुसैन[अ०] का इन्कार अपनी जगह पर बाक़ी रहा। यहाँ तक कि यह कहना बिल्कुल सही है कि किसी रसूल, किसी नबी, किसी इस्लाह करने वाले, किसी हक़ की तरफ बुलाने वाले के बारे में हम तैय करके यह बता सकते हैं कि उसने क्या क़ुर्बानी पेश की मगर इमाम हुसैन[अ०] के बारे में तो यह ढूँढना है कि कौन चीज़ क़ुर्बान नहीं की और ढूँढने पर इस तलाश में कामयाबी नामुमकिन मालूम होती है।

दुश्मन हथियार बढ़ा रहा था। दबाव ज़्यादा से ज़्यादा करता गया मगर वह ज़र्रा भर भी हुसैन[अ०] पर असर न डाल सका। हुर के साथ वाला एक हज़ार का लश्कर ही क्या कम था। ज़ुहैर इब्ने क़ैन कह रहे थे कि मौला हमें इनसे निपट लेने दीजिये वरना इतनी बड़ी फ़ौज आ जाएगी जिसका हम मुक़ाबला न कर सकेंगे मगर एक हज़ार और एक लाख में फ़र्क़ तो वह देखे जो किसी भी तरह बढ़ी हुई तादाद से घबरा सकता है। इमाम के लिए तो उसूल सामने था। अख़लाक़ी उसूल कि हम जंग में शुरुआत नहीं करना चाहते। इसके नतीजे में चाहे एक हज़ार की फ़ौज बढ़कर तीस हज़ार तक पहुँचे और चाहे एक लाख तक।

6 मुहर्रम तक कर्बला की ज़मीन फ़ौज की तादाद से छलकने लगी। सातवीं मुहर्रम को पानी बन्द कर दिया गया। हुसैन[अ०] अकेले नहीं थे। उनके साथ औरतें और छोटे बच्चे मौजूद थे। एक दो वक़्त नहीं तीन दिन गुज़र गये। बच्चे प्यास-प्यास कह रहे थे। ख़ुद इमाम की प्यास की यह हालत थी कि मालूम होता था आँखों के सामने धुआँ छाया हुआ है मगर इस पर भी बैअत के इन्कार में कुछ कमज़ोरी नहीं आयी थी। इमाम[अ०] का क्या कहना कोई बच्चा तक यह नहीं कह रहा था कि अब सख़्तियाँ नहीं उठ सकतीं। अब यज़ीद की बैअत कर ही ली जाए।

इसके बाद आशूर के दिन जो कुछ हुआ किसे मालूम नहीं, दुश्मन के पास कोई चाल बाक़ी न रही। सब चालें ख़त्म हो गयीं मगर हुसैन[अ०] पर असर न डाल सके। आख़िर में ज़ालिम बेबस साबित हुआ और सब्र की हुकूमत अपनी जगह जमी रही।

आख़िर में नेज़ों पर सर थे और लुटा हुआ क़ैदियों का क़ाफ़ला था। उसे ज़ालिम फ़ौज अपनी जीत का एलान समझ रही थी मगर वह तो हक़ीक़त में हुसैन[अ०] की जीत का एलान था। नेज़ों पर वह सर न थे,

बैअत के इन्कार पर जमे हुए अलम थे जो दुश्मनों के हाथों ही से उठे थे। वह कह रहे थे कि तमाशा देखने वालों चाहे तुम तमाशा ही देखते रहे मगर तुम गवाह रहना कि हमने बैअत नहीं की और पैग़म्बरे इस्लाम[स०] के वारिस और उनके पूरे ख़ानदान ने यज़ीद को जायज़ ख़लीफ़ा नहीं माना।

हुसैन[अ०] और उनका कारनामा जिसके सामने रहे वह मुमकिन नहीं कि सच्चाई और अच्छाई के रास्ते को किसी नाजायज़ दबाव से छोड़ दे। इन्सान अगर हक़ से हटेगा तो तो हुसैन[अ०] को भूल कर ही हटेगा और यही मक़ारिमे अख़लाक़ के बाक़ी रहने का बुनियादी पत्थर है।

इसके अलावा इमाम हुसैन[अ०] ने कर्बला में जिन मकारिमे अख़लाक़ के हर हिस्से पर अमल करके हर एक के लिए एक मिसाल क़ायम कर दी, अल्लाह के हुकूक़ और लोगों के हुकूक़, किसी हिस्से को अमल से खाली नहीं छोड़ा। हालांकि यह सब वह चीज़ें हैं जिनकी पाबन्दी का आम तौर से सुकून और इत्मिनान के वक़्त में मौक़ा समझा जाता है। मुसीबत और परेशानी की हालत में तो अलग बात है और उस वक़्त अगर अख़लाक़ियात में से किसी उसूल की पाबन्दी न भी की जाए तो उसे बुरा नहीं समझा जाता जैसे एक शख़्स बहुत ही पाबन्दी से नमाज़ के फ़रीज़े को अव्वल वक़्त में बजा लाने का पाबन्द है मगर मुसीबत और ख़ौफ़ या किसी परेशानी के मौक़े पर नमाज़ देर से पढ़ता है और बिना किसी शर्म और नदामत के कहता है कि आज इतना परेशान था कि नमाज़ भी अव्वल वक़्त न पढ़ी और अक़लमन्द भी उसको ज़र्रा बराबर ग़लत नहीं समझते।

एक बहुत ही अख़लाक़ वाला शख़्स हमेशा खुद से सलाम करने का आदी और किसी परेशानी के हंगाम में दूसरा सलाम करता है, वह जल्द उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देता और माफ़ करने के क़ाबिल समझा जाता है।

अब कर्बला से बढ़कर ख़याल कीजिये कि क्या कोई मुसीबत, डर और परेशानी हो सकती है? और इसके बाद भी इमाम का नमाज़ के बारे में एहतेमाम देखिये। रिश्तेदारों के साथ सुलूक में सबके दर्जों का ख़याल देखिये और हर एक के साथ अच्छा सुलूक देखिये।

इन मौक़ों पर अख़लाक़ को अपनाकर हुसैन[अ०] ने इन्सानी दिमाग़ में उन अख़लाक़ के उतर जाने की वह ख़ूबी पैदा कर दी जिसका मिटना मुमकिन नहीं है।

हालत ये है कि उस वक़्त जब आप आख़री रुख़सत के लिए ख़ेमे के बाहर तशरीफ़ लाए हैं उस वक़्त का हाल सोचिये। अन्सार जा चुके हैं, रिश्तेदार जुदा हो गये हैं, भाई के मारे जाने से कमर टूट चुकी है, जवान बेटे को दम तोड़ते देखा है और सबसे बढ़कर यह कि अभी दूध पीते बच्चे की क़ब्र बनाकर कर उठे हैं। अब ख़ुद आख़िरत के सफ़र के लिए जा रहे हैं ऐसी हालत में अख़लाक़ का ख़याल है।

हालांकि हुसैन[अ०] के ख़ेमों में सब हुसैन[अ०] से छोटे ही हैं मगर इमाम ख़ेमे के दर पर आकर सलाम करते हैं और नाम ले ले कर किसी को भी नहीं भूलते यहाँ तक कि घर की कनीज़ फ़िज़्ज़ा तक को याद करते हैं। क्या ये आम इन्सानी समझ से ऊँचा नमूना नहीं है?

और देखिये जेहाद के मैदान में जिसने आवाज़ दी हुसैन[अ०] आख़री वक़्त उसके सरहाने पहुँचे। इसमें इमाम पर थकन और परेशानी कितनी बढ़ गयी। ख़ेमे से मैदान का फ़ासला और उस सूरज की तेज़ गर्मी और तीन दिन की प्यास में इतनी बार जाना और इतनी बार आना क्या मुमकिन था कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] अपने इस दस्तूर में कोई फ़र्क़ आने देते बल्कि जिसमें कमतर होने का एहसास था उसके लिए खुसूसियत बढ़ा दी। जौन, अबूज़र के ग़ुलाम के सरहाने गये ही नहीं बल्कि उसके चेहरे पर चेहरा रखा और ख़ुदा की बारगाह में उसके लिए दुआएं फरमायीं।

यक़ीनन यह वह अख़लाक़ी उसूल का अन्जाम देना था जो उन हालात में हुसैन[अ०] के सिवा किसी के बस की बात न थी।

इराक़ के रास्ते में इमाम हुसैन[अ०] ने दुश्मनों की फ़ौज को पानी पिलाया था। यही अख़लाक़ का अमल क्या कम था मगर इससे बड़ी अख़लाक़ की मेराज इसमें नज़र आती है कि कर्बला में जब इन्हीं दुश्मनों ने पानी बन्द कर

दिया और छोटे बच्चे तक प्यास की शिद्दत से बेताब थे और पानी के लिए तड़प रहे थे तो इमाम ने हर तरह पानी माँगा मगर कभी अपना वह सुलूक याद नहीं दिलाया कि मैंने पानी पिलाया था। इसलिए कि एहसान करके उसे याद दिलाना बलन्द ज़र्फ़ी का मुक़तज़ा नहीं है।

ऐसे ही कितने अख़लाक़ी सबक़ हैं जो हुसैनी कारनामे के तफ़सीलात में छुपे हैं जिनकी याद क़ायम रखना और उन पर अमल करना इन्सान को हक़ीक़ी इन्सानियत से पहचनवाने की ज़मानत है।

''जिन्हें ये एहसास है कि हमारा मालिक अल्लाह है और वह उस पर क़ायम व बरक़रार रहते हैं उन्हें न वाक़िआ होने से पहले ख़तरा होगा और न वाक़िआ होने के बाद अफसोस होगा।''

अब इस मेयार पर वाक़िआत की रौशनी में देखिये कि वाक़िअ-ए-कर्बला के पहले डर किसे था? हुसैन[अ०] को या उनके मुख़ालेफ़ीन को और वाक़िए के बाद अफसोस किसे हुआ? हुसैन[अ०] को या यज़ीद को?

देखने में तो वक़्ती हुकूमत को डर की कोई वजह नहीं थी इसलिए कि तमाम इस्लामी दुनिया बैअत कर चुकी थी। कुछ लोग थे जिन्होंने बैअत नहीं की थी। उनमें भी कुछ के बारे में मालूम था कि वह कमज़ोर दिल के हैं। मज़बूत इरादे के मालिक जो थे वह एक हज़रत इमाम हुसैन[अ०] थे। फिर भी यज़ीद डरा हुआ था।

हज़रत इमाम हुसैन[अ०] से बैअत लेना खुद ही डर का नतीजा था वह जानता था कि सब सही मगर हक़ मेरी तरफ़ नहीं। यही ख़लिश कि हक़ मेरी तरफ नहीं आया कि हक़ के अलमबरदार से बैअत ली जाए। यज़ीद जानता था कि हुसैन[अ०] को इस्लामी उम्मत पर हुकूमत का हक़ है और मुसलमानों के हक़ीक़ी सरदार हुसैन[अ०] हैं यही रक़ाबत की वजह हो सकती थी वरना बादशाह को फ़क़ीर से, एक तख़्त और ताज और सरदारी के मालिक को एक अलग रहने वाले ज़ाहिद से रक़ाबत के क्या मानी?

फिर अगर यज़ीद की हुकूमत दुनिया के नाम से होती तो भी यह बात न होती मगर वह हुकूमत तो दीन के नाम पर थी रसूल[स०] की जानशीनी के नाम पर थी और हुसैन[अ०] दीने इस्लाम की हिफ़ाज़त करने वाले और रसूल[स०] के हक़ीक़ी जानशीन थे बस ये वजह मुख़ालेफ़त और दुश्मनी की थी और यह डर था कि न जाने कब दुनिया असल मरकज़ की तरफ़ खिंच जाए इसलिए बैअत हासिल करने की फ़िक्र थी।

मगर हुसैन[अ०]— वह मुतमइन थे। उन्हें कोई डर न था क्योंकि वह अल्लाह को अपना रब समझते थे जब उन्होंने कहा कि मैं बैअत नहीं करूँगा तो चाहे दुनिया न समझती हो मगर वह जानते थे कि इसके नतीजे क्या होंगे। उन्होंने सब कुछ समझ कर कहा था कि मैं बैअत नहीं करूँगा। इसके मतलब में यह सब दाख़िल था कि बैअत नहीं करूँगा चाहे वतन छोड़ना पड़े, बैअत नहीं करूँगा चाहे सब साथी क़त्ल हो जाएं, बैअत नहीं करूँगा चाहे बराबर का भाई, जवान बेटा, भतीजे भाँजे सब काम आ जाएं।

दुनिया ने देख लिया कि हुसैन[अ०] उन उस वक़्त इन्कार किया था जब तमाम मददगार और रिश्तेदार मौजूद थे और हुसैन[अ०] उस वक़्त भी इन्कार पर क़ायम रहे जब कोई पास न रहा बल्कि उस वक़्त भी जब सर काट दिया गया। यज़ीद का बैअत चाहना डर का नतीजा था और इमाम हुसैन[अ०] का बैअत से इन्कार करना बेख़ौफ़ी का नतीजा था।

इसके बाद ये कि क्या यज़ीद और इब्ने ज़ियाद को ख़बर देने वाले यह नही बता रहे थे कि इमाम हुसैन[अ०] के साथ कितने आदमी हैं तो फिर ज़रा ग़ौर कीजिये कि आम क़ानून के मुताबिक़ सौ डेढ़ सौ लोगों के लिए कितनी फ़ौज चाहिए? ज़ाहिर है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाँच सौ लोग और ज़्यादा ले लीजिये एक हज़ार। फिर कर्बला में तीस हज़ार फ़ौज क्यों इकटठा की गई? यह सिर्फ़ डर का असर हो सकता है जो दिल में सुकून के न होने का नतीजा है हक़ की बेपनाह ताक़त से यह धड़का लगा हुआ था कि जो फौज भेजी जाये उसी में के बहुत से लोग कहीं हुसैन[अ०] की तरफ न चले जाएं। इस ख़तरे की निशानी हुर की शक्ल में सामने आयी।

फ़ौज की तादाद का बढ़ाना खुद उनमें से हर एक के ज़मीर पर दबाव डालना था। अब किसी एक का इस फौज

से अलग होना तीस हज़ार की फ़ौज से जंग करना था। नफ़्सियाती तौर पर साथियों की कसरत हर एक के लिए बहुत सख़्त ज़ंजीर होती है इसके लिए ऐसा ही ताक़तवर इरादे का मालिक तैयार हो सकता था जो तीस हज़ार के मुत्तहेदा रास्ते के ख़िलाफ अपना रास्ता बना सके।

यह तो उधर के ख़ौफ का हाल था और इमाम की बेख़ौफी देखिये कि जो छोटी जमाअत साथ थी उसे भी रुख़सत कर रहे थे एक जुमला तो इमाम ने ऐसा कह दिया कि शायद साथी भी ये सोचने पर मजबूर हो गये होंगे कि कहीं हक़ीक़त में इमाम हमें रुख़सत कर देना ही तो ठीक नहीं समझते? वह जुमला यह था कि ''मेरे अज़ीज़ों को भी अपने साथ लेते जाओ'' हालांकि इस इरशाद में इसको दिखाना था कि यह साथ छोड़ने की तहरीक भरोसा न होने के एहसास से नहीं है और भरोसा न होने का ख़याल इस तरह भी ख़त्म कर दिया कि आपने वफ़ादारी की सनद पहले ही दे दी थी। यह बेख़ौफी का एलान नहीं तो और क्या है कि इमाम असहाब की ज़िन्दगियाँ उनको वापस किये देते हैं और वह उन्हें इमाम के क़दमों पर डाले देते हैं आप उनसे बेनियाज़, और वह, अपनी ज़िन्दगियों से बेनियाज़।

इस्तेक़ामत अलल-ए-हक़ का मेयारी नमूना

सय्यदुलउलमा की यह तक़रीर 5 जून 1955ई० को सीतापुर के हुसैन-डे में हुई

''वह जिनका कहना ये है कि हमारा मालिक अल्लाह है और फिर वह उस पर जमे रहते हैं न उनके लिए डर है और न उन्हें ग़म होगा।''

''कहना ये है'' इसका मतलब यह नहीं कि यह अलफ़ाज़ ज़बान पर हैं बल्कि कहने से मुराद है उनकी ज़िन्दगी का उसूल जो उनके दिल पर नक़्श है।

अकसर जगह ''कहने'' का इस्तेमाल जो कुरआन में है वह इस माने से है। यह कोई ज़िक्र नहीं है जिसको ज़बान से दोहराने का हुक्म हो बल्कि यह एक हक़ीक़ी मुसलमान का मक़सद है जो पेश किया जा रहा है इसी तरह ''कुल हुवल्लाहु अहद'' इसका ये मतलब नहीं है कि यह अलफ़ाज़ तुम्हारी ज़बान से अदा होने चाहिएं बल्कि तुम्हारे सामने हमेशा यह रहना चाहिए। तुम्हारा अक़ीदा यह होना चाहिए कि तुम्हारी ज़िन्दगी पूरी तरह इस हक़ीक़त का एलान होना चाहिए।

इनका कहना क्या है? यह कि हमारा मालिक अल्लाह है। अल्लाह वह बलन्द और बरतर ज़ात जिससे बुज़ुर्ग और बरतर कोई दूसरा ख़याल होना मुमकिन नहीं और वह ज़ात जो नेकी ही को पसन्द करती है और बुराई से रोकती है जब यह दिमाग़ में रहेगा कि हमारा मालिक वह है तो इन्सान सच्चाई और अच्छाई के रास्ते से नहीं हटेगा क्योंकि इन्सान फितरत के लेहाज़ से नेकी और सच्चाई को पसन्द करता है लेकिन लालच और डर के जज़्बात उसको बुराईयों की तरफ़ ले जाते हैं अगर अल्लाह के मालिक होने का ख़याल रहा तो कोई लालच और डर उस पर असर नहीं डाल सकता।

फिर यह कि इन्सान जब अपने को मुस्तक़िल वजूद समझता है तब ही ख़तरों का ख़याल करता है मगर जब अपने नफ़्स का मालिक अल्लाह को समझ लिया तो वह ख़तरों से निडर हो जायेगा। वह मालिक है इसलिए उसे बाक़ी रखना है तो बाक़ी रखे और उठा लेना है तो उठा ले। यही ख़याल हक़ के रास्ते में बड़ी से बड़ी कुर्बानी के लिए तैयार कर देने की ज़मानत लेता है।

हज़रत इमाम हुसैनअ० के सामने यह ख़याल पूरी तरह था फिर भी एहसास कि हमारा मालिक अल्लाह है यज़ीद की बैअत से इन्कार का ज़िम्मेदार था। जब अल्लाह को अपना मालिक मान लिया तो अब किसी यज़ीद की बैअत कहाँ मुमकिन है।

उन्हें अल्लाह के मालिक होने का ख़याल कोई हादिस ख़याल न था वह तो उनकी रगो रेशे में रचा-बसा था इसके बाद यज़ीद की बैअत उनके लिए मुमकिन ही न थी।

इस रासिख़ ख़याल के न बदलने वाले तक़ाज़ों पर सख़्ती के साथ क़ायम और बरक़रार रहना ही वह ''इस्तेक़ामत'' है जिसका कुर्आन ने तज़किरा किया है।

अब इसी इस्तेक़ामत को चाहे दुनिया ज़िद कहे

जैसा कि कहा जाता है कि इमाम हुसैन[अ०] ने मुशीरों का कहना नहीं माना। ज़िद से काम लिया वह बड़े ज़िद्दी थे मैं कहता हूँ कि अगर इसका नाम ज़िद है तो कौन नबी[अ०] थे जिन्होंने ज़िद से काम नहीं लिया, जनाबे इब्राहीम[अ०] बुतों की मुख़ालेफ़त से बाज़ आ जाते तो आग में क्यों फेंके जाते, जनाबे मूसा[अ०] फ़िरऔन की हिदायत छोड़ देते तो मिस्र से क्यों निकलना पड़ता, यहूया ने बादशाहे वक़्त को उसकी चाहत के हिसाब से मसला बता दिया होता तो उनका सर क्यों काटा जाता बल्कि ज़िद अगर इसी का नाम है तो सबसे पहले इस फेहरिस्त में ख़ुद अल्लाह का तज़किरा आना चाहिए। इस लिए कि जो नबी आता उसको झुठलाया जाता था, उसे तकलीफ़ें पहुँचायी जाती थीं या उसे क़त्ल कर दिया जाता था और वह था कि नबी के बाद नबी भेजे ही चला जाता रहा।

मगर वाक़िआ यह है कि जो बातिल पर डटा हो वह बुरा होता है और जो हक़ पर हो वह होता है सब्रो सिबात और इस्तेक़्लाल और उसी को क़ुरआन मजीद में कहा गया है "इस्तेक़ामत"।

हक़ पर इस्तेक़ामत का नतीजा क्या है?

"फ़ला ख़ौफ़ुन अ़लैइहिम वलाहुम यहज़नून"

इसका नतीजा यह है कि उनमें कोई बच्चा भी डरा नहीं और उनमें से किसी के क़दम में ज़र्रा बराबर भी घबराहट नहीं... मगर वह तीस हज़ार की फ़ौज... उन्होंने आशूर के रोज़ कितनी बार मैदान छोड़ दिया।

अब लीजिये ग़म को... ग़म से मुराद किसी मुसीबत से असर लेना या तकलीफ़ का एहसास करना नहीं है बल्कि यह अफ़सोस होना है कि हम ने क्यों ऐसा किया जिसका नतीजा इस सूरत में सामने आया।

वाक़िअ-ए-कर्बला के बाद उधर शादियाने बज रहे हैं। ख़ुशी से ईदें मिली जा रही हैं। मगर हक़ीक़त में अफ़सोस है। अफ़सोस हार के एहसास का। यज़ीद का यह कहना कि ख़ुदा इब्ने मरजाना पर लानत करे उसने ऐसा क्यों किया। यह उस अफ़सोस को दिखाना है। उसी अफ़सोस को आज तक यज़ीद की तौबा साबित करने के लिए उसके चाहने वालों की तरफ से पेश किया जाता है मगर यह तौबा का दावा ग़लत है।

खुला सुबूत इसका, कि यज़ीद ही वाक़िआते कर्बला का ज़िम्मादार था यह है कि अगर इब्ने ज़ियाद ने इतना बड़ा क़दम ख़ुद उठाया था तो वाक़िअ-ए-कर्बला के बाद उसे हुकूमत से अलग क्यों न किया गया। हालांकि अहलेबैत[अ०] के साथ ज़रा भी रिआयत करने वाला हर हाकिम हटाया गया मगर यह हार के एहसास के बाद अफ़सोस था जो हर बातिल के चाहने वाले को कभी न कभी होना ज़रूरी था।

मगर इमाम हुसैन[अ०] और उनके साथियों में से किसी और का क्या कहना, किसी बच्चे तक को अफसोस नहीं हुआ कि इमाम हुसैन[अ०] ने बैअत क्यों न की। हालांकि कर्बला की मुसीबतें धीरे-धीरे पेश आयीं अगर किसी वक़्त अफसोस हुआ होता तो तरीक़े में बदलाव आ जाता और मुसीबतों से बचने के लिए तदबीर सोंची जाती।

किसे अफसोस हुआ? इसका एक खुला सुबूत यह होगा कि यह देखिये कि यज़ीद और उसके जानशीन बैअत के मुतालबे से पीछे हटे या हज़रत इमाम हुसैन[अ०] के जानशीन इन्कारे बैअत से पीछे हटे।

यह वाक़िआ है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] के बाद यज़ीद ने आपके बाक़ी घर वालों में से किसी से भी बैअत नहीं चाही इसके माने यह हैं कि वह अपने मुतालबे से हट गया और उन लोगों में से किसी ने अपने वक़्त के हाकिम की बैअत नहीं की।

फिर आख़िर में एक और सुबूत इसका देखिये कि जिसे अफ़सोस होता है वह वाक़िए को छुपाना चाहता है और जो ख़ुश होता है वह इसका इज़हार करता है।

अब आज देख लीजिये कि यज़ीदी जमाअत के लोग वाक़िअ-ए-कर्बला के इज़हार को नापसन्द करते बल्कि हर तरह उसके छुपाने पर लगे रहते हैं और हुसैनी जमाअत के लोग इसकी यादगारें क़ायम करते और इसके ज़िक्र को हर सूरत में ज़िन्दा रखने में लगे रहते हैं। इससे ज़ाहिर है कि हुसैनी जमाअत को हुसैनी कारनामे पर फ़ख़्र है और वह फ़ख़्र इसका है कि हुसैनी क़ुर्बानी ने हक़ और बातिल का फ़र्क़ हमेशा के लिए क़ायम कर दिया जो आपका हक़ीक़ी मक़सद था। ❁❁❁